

सामाजिक मूल्यों के संवाहक स्मृतिकार ऋषि पराशर

डा० आनन्द कुमार

सह-आचार्य, संस्कृत विभाग

देशबन्धु महाविद्यालय, (दिल्ली विश्वविद्यालय)

कालका जी, नई दिल्ली-110019

भारतीय संस्कृति की विशिष्टता उसकी ऋषि परंपरा में निहित है। यह ऋषि परंपरा केवल आध्यात्मिक साधना तक ही सीमित नहीं रही बल्कि उसने समाज, नीति और मूल्य-व्यवस्था, धर्म एवं संस्कृति के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और समाज का मार्गदर्शन किया है। इस परंपरा में ऋषि पराशर एक ऐसे स्मृतिकार हैं जिन्होंने सामाजिक मूल्यों के संरक्षण और संवर्धन का कार्य किया। वे न केवल धार्मिक द्रष्टा थे अपितु समाज के परिवर्तनशील स्वरूप को समझने वाले क्रान्तद्रष्टा भी थे। उन्होंने पराशरस्मृति के माध्यम से भारतीय समाज को नवीन युग की आवश्यकताओं के अनुरूप दिशा प्रदान किया।

कूटशब्द: सामाजिक मूल्य, पाणिनि, कौटिल्य, वर्ण, आश्रम, षट्कर्म, धर्मशास्त्र, चान्द्रायणव्रत।

महर्षि यास्क ने आज से सत्ताइस सौ वर्ष पूर्व कहा था 'साक्षात्कारकृतधर्माणो ऋषयः बभूवुः'।¹ अर्थात् ऋषियों ने धर्म का यथा-अर्थ का साक्षात्कार किया है। उन्होंने निरुक्त में पराशर का नाम लिया है तो पाणिनि ने भिक्षुसूत्र नामक ग्रन्थ को पाराशर्य बताया है। तैत्तिरीयारण्यक एवं बृहदारण्यक में व्यास के लिए 'व्यास पाराशर्य' या 'पाराशर्य' कहा गया है इसलिए कि व्यास महर्षि पराशर के पुत्र थे। पराशरस्मृति के 39 श्लोकों का संक्षिप्त रूप गरूड़पुराण में ग्रहण किया गया है।

पराशर ऋषि थे, द्रष्टा थे और अग्रणी ऋषियों में प्रतिष्ठित थे। इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में सूक्त संख्या 65 से 73 तक नौ सूक्त उनके हैं जिनमें 61 ऋचाएँ हैं। नवम मण्डल की सूक्त संख्या 97 में 31 से 44 मंत्र तक चौदह ऋचाएँ उनकी हैं। इस प्रकार ऋग्वेद में पचहत्तर ऋचाएँ पराशर की हैं। नवम मण्डल की उनकी ऋचाओं में से आठ ऋचाएँ सामवेद में भी हैं जिनका गान के लिए चयन किया गया था। ऋग्वेद के सातवें मण्डल के अठारहवें सूक्त की इक्कीसवीं ऋचा में पराशर के नाम का पृथक् उल्लेख भी है। इस प्रकार पराशर वेद के शीर्षस्थ ऋषियों में हैं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पराशर के मत का छः बार उल्लेख है। सामाजिक और राजव्यवस्था के संदर्भ में कौटिल्य-जैसे गम्भीर विचारक यदि पराशर के मत का कई बार उल्लेख करते हैं तो स्पष्ट है कि कौटिल्य-जैसे व्यक्ति के मन में पराशर के विचार के प्रति कितना आदर था। वह विचार किसी अन्य क्षेत्र का नहीं बल्कि सामाजिक क्षेत्र का था। इन उल्लेखों का तात्पर्य इतना ही है कि ऐतिहासिक दृष्टि से पराशर की प्राचीनता और उस काल में उनकी मान्यता और महत्ता पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं है। पराशर के व्यक्तित्व और विचार की महत्ता का अनुमान केवल इस बात से भी लगाया जा सकता है कि वैदिक काल के बाद भी शास्त्रज्ञों और लोक में समान रूप से यह उक्ति व्यापक रूप से ख्यात हो गई - 'कलौ पाराशरस्मृतः'।² पराशरस्मृति किसी देश विशेष, सम्प्रदाय विशेष को लेकर धर्माख्या नहीं है अपितु मनुष्यमात्र का पथ-प्रदर्शित करती है। इस स्मृति के आरम्भ में ही ऋषियों ने प्रश्न किया है-

मानुषाणां हितं धर्मं वर्तमाने कलौ युगे।

शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत॥³

अर्थात् वर्तमान में मनुष्यों के हितकारी धर्म, शौच एवं आचार का यथावत् उपदेश कीजिए। ऋषियों के वचन को सुनकर व्यास ने कहा कि वे सभी तत्वों के ज्ञाता नहीं हैं। इस विषय में तो उनके पिता (पराशर) से ही पूछना चाहिए। तब धर्म-तत्त्व के अर्थ को जानने के इच्छुक सभी ऋषि व्यास को आगे करके बदरिकाश्रम गये, जहाँ पराशर का वास था।⁴ वहाँ पहुँचकर व्यास ने आने का प्रयोजन बताया और कहा - 'मुझे धर्म का उपदेश कीजिए। मैंने मनु प्रोक्त धर्मों को और वसिष्ठ, कश्यप, गर्ग, गौतम, अत्रि, विष्णु, संवर्त, दक्ष, अंगिरा, शातातप, हरित, याज्ञवल्क्य, कात्यायन, प्रचेता तथा आपस्तम्बकृत धर्म और जो शंख और लिखित के धर्म हैं- ये सब श्रुतिसम्मत धर्म आप के द्वारा उपदेश करने पर मैंने सुने हैं और वे मैंने भूले नहीं हैं।'⁵ इस पर पराशर ने अपना वक्तव्य प्रारंभ किया जो हमारे पास पराशरस्मृति रूप में उपलब्ध है। इस स्मृति में पराशर के समाज विषयक कई नियम अनुस्यूत हैं जो उन्हें सामाजिक मूल्यों का संवाहक सिद्ध करते हैं। वैदिक ऋषियों ने समाज को चार वर्गों में विभक्त करके उसे 'वर्ण' की संज्ञा दी। इसके साथ ही व्यक्तिगत जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए उसे भी चार भागों में विभक्त किया और 'आश्रम' नाम दिया। पराशरस्मृति में मनुस्मृति की कठोर व्यवस्थाओं की अपेक्षा कालानुसार लचीलापन दिखाई देता है। ऋषि पराशर ने धर्म के स्वरूप को समय और परिस्थिति के अनुसार बदलने की बात कही है-

कलौ मनुस्मृतिं त्यक्त्वा पराशरं समाचरेत्।

अर्थात् कलियुग में मनुस्मृति नहीं, पराशरस्मृति का पालन करना चाहिए।

चारों वर्णों का कर्तव्य निर्दिष्ट करते हुए पराशर लिखते हैं कि चारों वर्णों का धर्म आचार से ही पालित होता है और जिनका शरीर आचार से भ्रष्ट है उनसे धर्म भी विमुख हो जाता है-

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः ।

आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥⁶

पराशर ने ब्राह्मणों के लिए छः प्रकार के कर्म के निर्देश दिये हैं - वेदाध्ययन और वेदाध्यापन, यजन और याजन, दान लेना और दान देना। इन कर्मों का निष्पादन करते हुए ब्राह्मण को अतिथि-पूजन करना चाहिए और नित्य आचार का पालन करना चाहिए।⁷ इनके अतिरिक्त ब्राह्मण को प्रतिदिन त्रिकाल स्नान, गायत्रीजप, होम, देवपूजन, अतिथि सत्कार और ब्रह्मवैश्वदेव-ये छः कर्म करने चाहिए-
संध्यास्नानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम्।
वैश्वदेवातिथेयं च षट्कर्माणि दिने दिने॥⁸

पराशर ने ब्राह्मण के लिए तो जीवनपर्यन्त चलनेवाले षट्कर्म का निर्देश दिया, जिनकी परिसीमा में ही ब्राह्मण को चलना है। इसके अतिरिक्त जीवन को सुन्दर एवं सुसंस्कृत बनाये रखने के लिए दैनिक कर्म के रूप में षट्कर्म को बताया। केवल त्रिविध स्नान, होम देवपूजन तो परोक्ष फलदायक कर्म है, इनके साथ-साथ मानवहित को भी संयुक्त कर दिया। अतिथि को देवतुल्य बतलाया है। अतिथि के रूप में आये हुए मनुष्य की सहायता और सेवा करना परम कर्तव्य कहा।⁹ नित्यनैमित्तिक कर्म के साथ "मानवहित की भावना का मिश्रीकरण"- यही मूल्य है। जिसमें मानवकल्याण हो वास्तव में वही कर्तव्य है, केवल आचार में लगे रहना तो कर्तव्य का बाह्य अंग है। ब्राह्मण के षट्कर्म¹⁰ में तीन कर्म तो उसके वैयक्तिक लाभ के हैं और तीन कर्म अध्यापन, याजन और प्रतिग्रह, ये समाज कल्याण के लिए हैं। समाज-कल्याण की भावना ही तो वर्णव्यवस्था का परम मूल्य है। यह वैशिष्ट्य दूसरे समाज में प्राप्य नहीं है।

ब्राह्मण के ऐसे उदारतापूर्ण कर्म तथा तपजन्य तेज के कारण इसे ऊर्वर खेत के समान बताया है, जिसमें बोये गये बीज कभी निष्फल नहीं हो सकते अर्थात् जिन कामनाओं से ब्राह्मण को दान दिया जाता है, भोजन करवाया जाता है, वे समस्त कामनायें शीघ्र सफल होती हैं अर्थात् ब्राह्मण अपने कर्तव्य से सबकी सभी कामनाओं को पूर्ण करता है।¹¹ चारों वर्णों के लिए आचार आवश्यक है। स्मृतिकार कहते हैं कि चारों वर्णों का धर्म आचार से ही पालित होता है। जो व्यक्ति आचार-भ्रष्ट है, उनसे धर्म विमुख हो जाता है-

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः।

आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः॥¹²

कर्तव्यपालन तो अपना नैतिक मूल्य है। इसके साथ-साथ आचार का होना परमावश्यक है। सदाचार तो व्यक्तित्व में निखार लाता है। सोना में यदि सुगन्ध हो तो इससे बढ़कर और सुन्दर क्या हो सकता है! इस प्रकार सभी वर्ण के लोग अपने वर्णधर्म में तत्पर एवं सजग रहकर आचार का पालन करें। कर्तव्य के साथ आचार का समन्वय ही तो मूल्य है। पराशर ने इसपर विशेष बल दिया है।

ब्राह्मण अपने त्याग और तपस्या के कारण पवित्र है। वह जिस कार्य को करता है, पवित्र हो जाता है। अन्य व्यक्ति जो उसकी सहायता करते हैं, वे धन्य-धन्य हो जाते हैं। स्मृतिकार पराशर लिखते हैं-

अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः।

पदे पदे यज्ञफलानुपूर्व्याल्लभन्ति ते॥¹³

अर्थात् मरे हुए अनाथ ब्राह्मण के शव ढोने वाले द्विजाति जितने कदम चलते हैं उतना ही उन्हें यज्ञफल मिलता है। ऐसा कार्य करना अतीव पुण्यप्रद है। ऐसा करने से अशुभ या पाप नहीं होता। इस प्रकार के कार्य करने से केवल स्नानमात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है।¹⁴ लोगों में सामाजिक सहयोग की भावना फैलाना- स्मृतिकार का यही उद्देश्य है। स्मृतिकार ने इस सहयोगात्मक मूल्य को इस प्रकार स्थापित कर दिया है कि यह आज भी समाज में विद्यमान है। समाज को उचित दिशा-निर्देश देने वाले ब्राह्मण के विषय में जनसामान्य की यही भावना आज भी देखी जाती है। धर्माचरण नामक अष्टम अध्याय में पराशर वर्णों की अपेक्षा ब्राह्मण को अधिक महत्त्व देते हैं। यह वर्ण समाज को ज्ञान का प्रकाश देने वाला था, लोगों को कर्तव्य का बोध कराने वाला था, समाज में व्याप्त अनीतियों और अधर्मों को दूर भगाने वाला था। यहाँ तक कि शासन प्रधान राजा को क्षत्रियोचित शिक्षा और शासनोपयोगी मंत्र देने वाला भी यही था। न्याय व्यवस्था में धर्मशास्त्र का प्रमाण प्रस्तुत करने वाला ब्राह्मण ही था। सब कुछ करते हुए भी वह अपने लिए कुछ नहीं करता था, न रखता था। वह अपने भरण-पोषण के लिए समाज पर आश्रित था। समाज के ऐसे उपयोगी व्यक्ति के लिए सदाचार का पालन परमावश्यक था क्योंकि यही तो समाज का प्रमाण था। पराशर ऋषि ने कहा है कि ब्राह्मण के लिए मंत्रज्ञान आवश्यक है। यहाँ मंत्रज्ञान के दो अर्थ हैं - एक तो मंत्रों या ऋचाओं का ज्ञान और दूसरा शासनात्मक परामर्श के लिए नीतियों का ज्ञान। जैसे काष्ठ का हाथी और चमड़े का मृग अनुपयोगी होते हैं, वैसे ही वेद तथा शास्त्रों के अध्ययन से रहित ब्राह्मण अनुपयोगी और निष्फल होते हैं। वैसे ब्राह्मण प्रतिष्ठा के योग्य नहीं होता-

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः॥¹⁵

ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः।

यथा हुतमनस्रौ च अमन्त्रो ब्राह्मणस्तथा॥¹⁶

इसी प्रकार अशिक्षित ब्राह्मण को ब्राह्मण न मानना अर्थात् जन्म के स्थान पर कर्म और आचरण को वर्ण-व्यवस्था का आधार मानना भी परम्परा से हटकर कुछ करने का साहस है-

यथा षण्डोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरूषराफला।

यथा चाज्ञेऽफलं दानं यथा विप्रोऽनृचोऽफलः॥¹⁷

मंत्रपूर्वक किये गये संस्कार से तेज में वृद्धि होती है। मानव में तेज या कान्ति का संधान करने के लिए मंत्रपूर्वक संस्कार करने का विधान किया गया है।¹⁸ सभी मंत्रों में गायत्री को प्रधानता दी गयी है। इस मंत्र का सीधा सम्बन्ध तेजोराशि सूर्य से है। अतः इस मंत्र का अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मण को देवतुल्य पूज्य कहा गया है।¹⁹

स्मृतिकार पराशर ने तेजस्विता एवं सुसंस्कृत होने के कारण चारों वर्णों में ब्राह्मण को विशेष आदरपात्र माना है। इन्होंने तो यहाँ तक कह दिया-

दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो विजितेन्द्रियः।

कः परित्यज्य दुष्टाङ्गं दुहेच्छीलवतीं खरीम्॥²⁰

ऐसा कहकर स्मृतिकार ने प्रत्येक व्यक्ति को तपोजन्य तेज के संग्रह करने के लिए उत्प्रेरित किया है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति तेजस्वी हो, धर्मनिष्ठ हो, चरित्रवान् और सदाचारी हो इसी मूल्य को स्थापित करने के लिए स्मृतिकार ने ऐसे निर्देश किए हैं। ब्राह्मण के पास धर्मशास्त्र का ज्ञान है और वे वेद-विद्या से मण्डित होते हैं इसीलिए उनकी वाणी को प्रमाणस्वरूप कहा गया है। जैसे किसी अमूल्य निधि की रक्षा की जाती है वैसे ही ब्राह्मण और गौ की रक्षा करने के लिए कहा गया है। इनकी सुरक्षा सर्वोपरि है। इस मूल्य की रक्षा में यदि रक्षक की हानि भी हो जाती है तो रक्षक का कोई दोष नहीं।²¹ इस प्रकार स्मृतिकार पराशर ने सामाजिक मूल्यों की रक्षा के लिए नियम निर्धारित किये हैं। इन्होंने कहीं-कहीं किसी वर्ण-विशेष को अधिक महत्ता दे दी है तथा अन्य लोगों को उसकी सुरक्षा और अनुगमन का निर्देश किया है। उन नियमों का वाच्यार्थ न स्वीकार कर हमें भावार्थ मानना चाहिए। ब्राह्मण या गौ-ये समाज की बहुमूल्य एवं बहु उपादेय वस्तुएँ हैं। इन वस्तुओं जैसा ही बहु उपयोगी एवं सर्वजनप्रिय बनने के लिए जनसामान्य को प्रेरित किया गया है। पराशर ने समाज को सुसंगठित, सभ्य, सुसंस्कृत एवं प्रगतिशील बनाने के लिए नियम निर्धारित किये हैं। यहाँ पराशर का सामाजिक न्याय का दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। ऋषि पराशर ने समाज के सभी वर्गों के लिए समान आचार और कर्तव्य निर्धारित किए हैं, जिससे सामाजिक समरसता बनी रहे।

पराशरस्मृति में परिवार संबंधी भी अनेक नियम निर्धारित किये गये हैं। विवाह परिवार का मुख्य आधार है। इस वैवाहिक सम्बन्ध के सुदृढ़ होने पर ही दाम्पत्य जीवन सुखी होता है और परिवार समृद्ध होता है। स्मृतिकार ने कन्या की चार अवस्थाएँ बतलायी हैं- गौरी, रोहिणी, कन्या और रजस्वला। आठ वर्ष की कन्या 'गौरी', नौ वर्ष की 'रोहिणी', दस वर्ष की 'कन्या' और इसके बाद की लड़की 'रजस्वला' कही जाती थी। इन्होंने कन्या का वैवाहिक वय बारह वर्ष निर्धारित किया है। यदि इस आयु तक कन्या का विवाह नहीं करते तो माता, पिता और उसका ज्येष्ठ भ्राता नरकगामी होता है। ब्राह्मण का रजस्वला से विवाह करने के लिए भी निषेध किया गया है।²² तद्युगीन समाज में फैले हुए व्यभिचार को रोकना तथा परिवार एवं समाज को यौन कदाचार से बचाना-ये पराशर मुनि के उद्देश्य हैं। कामभावना जाग्रत होने की अवस्था में कन्या का विवाह कर देने पर व्यभिचार को प्रश्रय नहीं मिल सकेगा। इन नियमों के माध्यम से स्मृतिकार ने इन्हीं सामाजिक मूल्यों की रक्षा करना चाही है।

सुखी दम्पति ही समृद्ध समाज की स्थापना कर सकते हैं। इसके लिए इन्होंने दम्पति को निर्देश किया है कि वे दोनों कोई भी धार्मिक व्रतानुष्ठान अथवा गृहस्थ कर्म को पारस्परिक परामर्श से ही करें। स्त्रियों को पातिव्रत्य पालन के लिए भी इन्होंने उत्प्रेरित किया-

दरिद्रं व्याधितं धूर्त भर्तारं याऽवमन्यते।

सा शुनी जायते मृत्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥

पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत्।

आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं ब्रजेत्॥²³

पुरुष को भी स्त्री की रक्षा एवं भरण-पोषण करने के लिए कहा गया है। यह पुरुष का परम कर्तव्य है। सुखी दाम्पत्य की स्थापना के लिए ऐसे नियम निर्धारित किये गये हैं। तपस्या का पावित्र्य यदि स्त्री-पुरुष में हो तो दाम्पत्य जीवन में और सुन्दरता आ जाती है।

परिवार को सुदृढ़ एवं मर्यादापूर्ण बनाने के लिए पराशर मुनि ने एक निर्देश दिया है कि विवाहादि संस्कार क्रमिक रूप से होना चाहिए। पहले बड़े पुत्र का विवाह फिर उससे छोटे का होना चाहिए। इस बन्धन को अनिवार्यतः पालनीय बनाने हेतु इन्होंने लिखा है-

परिवितिः परीवेत्ता यया च परिविद्यते।

सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः॥²⁴

अर्थात् परिविति (जिसके छोटे भाई ने अपना विवाह कर लिया हो) परिवेत्ता (उसी परिविति का वह छोटा भाई) और जिस कन्या से परिवेत्ता विवाह करे तथा उस कन्या का दाता और उससे विवाह करने वाला व्यक्ति-ये पाँचों नरक में जाते हैं। इस दोष के निवारण के लिए कठिन कृच्छ्रव्रत का भी विधान किया गया है। ऐसा करने वालों में परिविति को दो कृच्छ्रव्रत, कन्या को एक कृच्छ्रव्रत, दाता को दो कृच्छ्रव्रत तथा विवाह कराने वाले को चान्द्रायणव्रत करना होता है।²⁵ हाँ, बड़े भाई के विवाह के लिए अयोग्य होने पर छोटे भाई का विवाह किया जा सकता है। इसमें कोई दोष नहीं होगा। इस प्रकार परनारी से उत्पन्न पुत्र का विवाह औरस पुत्र के बड़ा होने पर भी किया जा सकता है। यदि बड़ा भाई विवाह नहीं करने का निर्णय ले चुका हो तो छोटा भाई विवाह कर सकता है। इस सन्दर्भ में पराशर ने स्मृतिकार शंख को उद्धृत किया है।²⁶

विवाह तो छोटे या बड़े बेटे का किसी भी क्रम से किया जा सकता है। यथार्थतः उसमें कोई गुण या दोष नहीं होता। किन्तु पारिवारिक व्यवस्था में कितनी सुन्दरता आ जाती है। वह सुन्दरता मर्यादा की होती है। सम्पूर्ण परिवार एक मर्यादा में बँधा रहता है। यह मर्यादा एक प्रतिष्ठा का भी विषय है। आज भी यह मर्यादा सभ्य भारतीय परिवार में मिलती है। यही विवाह-व्यवस्था का मूल्य है। स्मृतिकारों ने ऐसे सुन्दर एवं सुदृढ़ मर्यादापरक मूल्य को स्थापित कर दिया था कि इस वैज्ञानिक युग में भी उसे नकारा नहीं जा सकता। यह आज भी मान्य है। इसका अभिप्राय यह है कि पराशर एवं अन्य धर्मशास्त्रकारों द्वारा निर्धारित यह मूल्य बहुत वैज्ञानिक एवं प्राचीन होकर भी चिरनवीन है।

दाम्पत्य सम्बन्ध को मधुर एवं सुखमय बनाये रखने के लिए पराशर ने स्त्री को पति-परायण होने का निर्देश दिया है। सती-साध्वी स्त्री कभी भी परपुरुष की ओर आकृष्ट नहीं होती। वह नीच स्थल में पड़े हुए भी अपने पति को खींचकर बाहर लाती है तथा उसी के साथ आनन्द विहार करती है। वह सदैव परपुरुष के दर्शन से आत्मरक्षा करती है-

व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बिलात्।

एवमुद्धृत्य भर्तरि तेनैव सह मोदते ॥²⁷

कोई पुरुष यदि दुर्व्यसनी है तो स्त्री अपने प्रेमपाश में बाँधकर वहाँ से बाहर खींच लाती है। यही साध्वी स्त्री की प्रकृति होती है। इसके लिए वह कलह नहीं करती और न पति का प्रतिवाद ही करती है। इससे आपसी संबंधों में प्रगाढ़ता एवं मधुरता आती है। स्त्री का यह आदर्श गुण ही सर्वोत्तम मूल्य है। बिना कलह के दुर्व्यसन से पुरुष को मुक्त करा देना कितना प्रशंसनीय है। यह आदर्श तो भारतीय नारी में ही है, कहीं अन्यत्र नहीं। इसके प्रेरणास्रोत पराशर सट्टश धर्मशास्त्रकार ही हैं।

समाज को व्यभिचार मुक्त होना चाहिए। इस मूल्य की रक्षा के लिए हमारे धर्मशास्त्रकारों ने अनेक युक्तियाँ लगायी हैं और नियम भी बताये हैं। पराशर ने स्त्रियों के संदर्भ में परम्परागत संकीर्णता से हटकर अतिरिक्त उदारता का परिचय दिया है। यथा-

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।

पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥²⁸

यहाँ पराशर के कहने का अभिप्राय यह है कि निम्नलिखित पांच असामान्य एवं विपत्ति-जैसी असामान्य स्थितियों में विवाहित स्त्री को दूसरा विवाह करने पर कोई दोष नहीं लगता-

1. पति का पता-ठिकाना न मिलना, अर्थात् घर छोड़कर गये पति द्वारा वर्षों तक पत्नी से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखना, यानी अपने विषय में कोई जानकारी न देना।
2. पति का मर जाना, अर्थात् विवाह के शीघ्र ही उपरान्त, सन्तान के बिना पति की मृत्यु।
3. पति का संन्यास ग्रहण कर लेना, अर्थात् गृहस्थ के दायित्व का निर्वाह न करना, पत्नी को सम्भोग तथा सन्तान सुख से वञ्चित रखना।
4. पति का नपुंसक, अर्थात् विवाह कर लेने पर भी रतिभोग करने में असमर्थ सिद्ध होना।
5. पति का पतित-आचारभ्रष्ट होने के कारण जाति से बहिष्कृत हो जाना, समाज में अपमानित होना।

उपर्युक्त परिस्थितियों में सद्यः विवाहिता स्त्री के पुनः विवाह करने में कुछ भी अनुचित नहीं। ऐसी विवाहिता को तो एक प्रकार से कुमारी समझना चाहिए।

विधवा स्त्री से समाज में व्यभिचार फैलना सम्भव था। वासना से मदान्ध होकर विधवा परपुरुष गमन कर सकती है। इससे समाज में अनैतिकता फैलेगी इसलिए अन्य धर्मशास्त्रकारों की भाँति पराशर ने भी विधवा पर कठोर नियंत्रण लगाया और उसे ब्रह्मचर्य पालन करने का निर्देश दिया-

मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।

सा मृता लभते स्वर्गं यथा सद् ब्रह्मचारिणः ॥²⁹

तिस्रः कोट्योऽर्थकोटी च यानि लोमानि मानुषे।

तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तरि याऽनुगच्छति ॥³⁰

अर्थात् पति के मरने पर ब्रह्मचर्य-पालन करने वाली स्त्री स्वर्ग जाती है। यदि पति के साथ ही वह भी प्राणत्याग देती है तो साढ़े तीन करोड़ वर्षों तक स्वर्ग में वास करती है। यहाँ स्वर्गभोग जैसा दुर्लभ फल दिखाकर स्त्री को नियंत्रित किया गया है। इनके लिए दण्डात्मक व्यवस्था नहीं दी गयी। यह पराशर की विशिष्टता है। स्वर्गप्राप्ति की कामना से विधवा स्त्रियाँ संयमित जीवन व्यतीत करती हैं और परिवार में रहकर मर्यादित जीवन सुखपूर्वक करती हैं किन्तु इसके विपरीत आचरण करने वाली स्त्री पतिकुल और पितृकुल दोनों को कलंकित करती है और वासना के वशीभूत होकर किसी पुरुष के

हार्थों की कठपुतली बनकर अपने जीवनकाल को दुःखी बना लेती हैं। उसका जीवन तो दुःखी होता ही है परिवार और सामाजिक जीवन में भी विकृति आ जाती है।

वास्तव में स्त्रियों के प्रति पराशर का दृष्टिकोण कितना उदार था। उन्होंने स्त्रियों के सम्मान, उनके अधिकार और समाज में उनके योगदान को स्वीकार किया है। यह उस समय के लिए एक प्रगतिशील दृष्टि थी।

इस प्रकार ऋषि पराशर ने जो सामाजिक मूल्य प्रतिपादित किए, वे आज भी प्रासंगिक हैं। यथा-सहिष्णुता और सहअस्तित्व का मूल्य, सत्य, अहिंसा, दान, दया और सेवा की भावना, कर्तव्यनिष्ठा और पारिवारिक समरसता का और समाज के सभी वर्गों के प्रति न्याय और समभाव का मूल्य।

इन मूल्यों ने भारतीय समाज को एकता और नैतिक बल प्रदान किया।

ऋषि पराशर की विशेषता यह थी कि वे केवल परंपरा के रक्षक नहीं, बल्कि युग-परिवर्तन के प्रवर्तक भी थे। उन्होंने यह माना कि समाज और धर्म को युगानुसार परिवर्तित होना चाहिए। उनकी यह दृष्टि उन्हें क्रान्तिद्रष्टा स्मृतिकार बनाती है। जहाँ मनु का दृष्टिकोण अधिक शास्त्रीय और कठोर था, वहीं पराशर का दृष्टिकोण मानवोचित, व्यावहारिक और सुधारवादी था। ऋषि पराशर भारतीय चिंतन परंपरा के उन महान ऋषियों में हैं जिन्होंने धर्म को लोकमंगल का साधन बनाया। उनकी स्मृति न केवल धार्मिक ग्रंथ है, बल्कि एक सामाजिक सुधार संहिता भी है। इस प्रकार वे “सामाजिक मूल्य के संवाहक और क्रान्तिद्रष्टा स्मृतिकार” के रूप में भारतीय इतिहास में अमर हैं।

पाद-टिप्पणियां

1. निरुक्त, 1/6, 2/3
2. पराशरस्मृति, 1/24
3. वही, 1/2
4. वही, 1/5
5. वही, 1/13-16
6. वही, 1/37
7. वही, 1/38
8. वही, 1/39
9. वही, 1/38, 53
10. वही, 1/39
11. वही, 1/55
12. वही, 1/37
13. वही, 3/45
14. वही, 3/42
15. वही, 8/23
16. वही, 8/24
17. वही, 8/25
18. वही, 8/26

19. वही, 8/31
20. वही, 8/32
21. वही, 9/1
22. वही, 7/6-9
23. वही, 4/15-16
24. वही, 4/19
25. वही, 4/20-21
26. वही, 4/24
27. वही, 4/28
28. वही, 4/25
29. वही, 4/26
30. वही, 4/27

संदर्भग्रन्थ

1. स्मृतिसंदर्भः, वॉल्यूम-2, नाग प्रकाशक, दिल्ली, 1988
2. पराशरस्मृतिः, शर्मा, गुरुप्रसाद, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1998
3. पराशरस्मृति, शास्त्री, वर्मा, डा० रामचंद्र, डायनेमिक पब्लिकेशंस (इंडिया) लिमिटेड, मेरठ
4. हिन्दी-निरुक्त, ऋषि, शर्मा, डा० उमाशंकर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1961
5. धर्मशास्त्र का इतिहास (1-5 भाग), काणे, पी० वी०, उत्तर प्रदेश हिन्दीसंस्थान, लखनऊ, 1992
6. संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, सूर्यकान्त, ओरियण्टलांगमैन, दिल्ली, 1972